शब्द–ब्रह्म
E- ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जनजातीय ग्रामीण जीवन का अर्थशास्त्र : एक अध्ययन

(पश्चिमी निमाड़ जिले के विशेष संदर्भ में)

श्रीमती रंजना चौहान (शोधार्थी)
राजीव गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मन्दसौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

ग्रामीण आर्थिक जीवन अत्यधिक संघर्षमय होने के कारण वहां धीमी प्रगति हुई है। मनुष्य अपने जीवन-यापन के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर रहते हैं। प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को सीधे प्रयोग करते हैं। प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता ही ग्रामीण जीवन के छोटे आकार को जन्म देती है। जनजातीय ग्रामीण जीवन में पेट भर खाने को अनाज, तन ढकने के लिए कपडे रहने के लिए मकान आदि प्रमुख आर्थिक समस्या है।

प्रमुख शब्द : ग्रामीण जीवन, कृषि, आर्थिक स्थिति

प्रस्तावना

ग्रामीण क्षेत्र में वस्तुओं का प्राथमिक उत्पादन प्रकृति के सहयोग से होता है। ग्रामीण लोगों का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मनुष्य अपने जीवन-यापन के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर रहते है। प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं का सीधे प्रयोग करते हैं। प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता ही ग्रामीण जीवन के छोटे आकार को जन्म देती है। ग्रामीण जीवन से आशय गाँवों के बहुमुखी विकास से है। यह एक नियोजित रणनीति है , जिसका मुख्य उद्दे श्य ग्रामीण जीवन की आर्थिक उन्नति है , जिससे उन्हें विकास का समुचित लाभ मिल सके। गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना इस समय गावों के विकास का मुख्य लक्ष्य है। इस वर्ग में मुख्यतः लघु व सीमान्त किसान, छोटे काश्तकार, ग्रामीण कारीगर, भूमिहीन व खेतिहर मजदूर हैं।

गांधीजी भारत के ग्राम्य जीवन के पुनरुद्धार को स्वराज्य-प्राप्ति का बहुत बड़ा साधन मानते थे। इसलिए उन्होंने अपने सुधार दल को ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया, ताकि हमारे गांव जो कि "गोबर के ढेर-से दिखाई देते है, 'आदर्श ग्राम' बन सकें।

आर्थिक स्थिति

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को हम प्रकृति की शक्तियों एवं प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता के आधार पर निर्भर योग्य अर्थव्यवस्था मान सकते हैं। आरण्यक सभ्यता से कृषि सभ्यता में प्रवेश करने में मानव समुदाय को हजारों वर्ष लगे । सैकड़ों छोटी-बड़ी खोजें होने के बाद कृषि की अर्थ व्यवस्था निर्मित हुई।

डॉ. रश्मि दुबे ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण लोगों की आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत जब उनके व्यावसायिक स्वरूप पर तथ्य संग्रह किया गया तो ज्ञात हुआ कि कुछ व्यक्ति जहां एक निश्चित अवधि में एक ही व्यवसाय करते हैं, वहां कुछ व्यक्ति एक ही अवधि में थोडे-थोडे समय के अन्तराल में अनेक कार्य करते हैं। जैसे एक कृषक जिसके पास स्वयं की भूमि कम है ,

शब्द–ब्रह्म
E- ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

वह अपने-अपने खेत में कृषक की हैसियत से कुछ समय कार्य करता है। उसके बाद दूसरों के खेतों में वह कृषि मजदूर के रूप में कार्य करने लगता है। इसी प्रकार कृषि मजदूरी करने वाला व्यक्ति भी सप्ताह में जहां 2-3 दिन मजदूरी करता है, वही कुछ दिन वह वनोपज संकलन या गांव में अन्य व्यक्तियों के यहाँ कार्य करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि किसी एक व्यवसाय से उनकी आव श्यकतानुसार आय की पूर्ति नही होती है, तो वह हर उस कार्य की और उन्मुख होते है , जहां उन्हें आर्थिक लाभ की संभावना दिखाई देती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से इस क्षेत्र मे इन लोगों का कौन-सा मुख्य व्यवसाय है और कौन-सा सहायक व्यवसाय है , इसका निर्धारण करना कठिन कार्य हो जाता है। ग्रामीण आर्थिक स्थिति का द्वितीय स्तर पशुपालन है, जो प्रथम स्तर से कुछ व्यवस्थित माना गया है। जनजा तीय समाज में पशुओं को पालते हैं, जिससे दूध उत्पादन , मांस उत्पादन तथा कृषि कार्य सम्भव हो। वे पशुओं से दूध , घी, मक्खन आदि बनाकर बेचते हैं एवं अपनी जीविका चलाते हैं। ग्रामीण जीवन में कृषि के साथ ही साथ टोकरी बनाना , सूत कातना, रस्सी बुनना, चटाई-दरी बुनना, लोहे के औजार बनाना, मिट्टी एवं धातुओं के बर्तन बनाना लकडी के फर्नीचर बनाना , बेत के झूले बनाना , शराब-निर्माण करना, छिंद की पत्तियों से झाड़ु आदि बनाने का कार्य करते हैं। इस परम्परागत उद्योग के साथ शासन के प्रोत्साहन से कई छोटे एवं कुटिर उद्योग ग्रामीण जीवन में प्रारम्भ हुए हैं।

आर्थिक समस्याएं

ग्रामीण जीवन में सबसे प्रमुख समस्या आर्थिक है अर्थात् पेट भर खाने को अनाज, तन ढकने के लिए कपडे, रहने के लिए मकान की समस्या है। इन्हें हम निम्न उपभागों में बांट सकते है :

1) स्थानान्तरित खेती सम्बन्धी समस्या

ग्रामीण व्यक्तियों में प्रायः 26 लाख व्यक्ति खेती पर निर्भर हैं, परन्तु उनमें से प्रायः सभी आदिम ढंग से खेती करते हैं। जिसे स्थानान्तरित खेती कहते हैं। इस प्रकार की खेती से न केवल जमीन की बर्बादी होती है बल्कि उपज भी बहुत कम और घटिया श्रेणी की होती है। इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि या तो उनको भूखे मरना पड़ता है या खेती को छोड़ना पड़ता है।

2) जंगल से सम्बन्धित समस्याएं

पहले ग्रामीणों का उनके जंगलों पर पूर्ण अधिकार होता था और वे वन सम्पत्तियों का उपभोग बिना किसी प्रतिबन्ध के करती थी। जंगली वस्तुओं, पशु, वृक्ष आदि सभी के वे पूरे मालिक थे, पर अब परिस्थिति बिल्कुल विपरीत है। अब इन समस्त चीजों पर सरकार का नियन्त्रण है और ठेकेदारों द्वारा लकडी या कोयला निकालने आदि के काम हो रहे हैं। ये ठेकेदार जनजातियों की अज्ञानता और सरलता के लाभ उठाकर उनका खूब शोषण करते हैं। रात-दिन कठिन परिश्रम करने पर भी उन्हें इतनी मजदूरी नही मिल पाती कि वे अपना पेट भर सकें।

3) भूमि व्यवस्था सम्बन्धी समस्याएं

पहले भूमि पर ग्रामीण का एकाधिकार हुआ करता था और वे उसका प्रयोग अपनी इच्छानुसार करते थे। अब नये कानूनों ने उनकी स्वतंत्रता को छीन लिया है। अब वे मनमाने तौर पर जंगल काटकर स्थानान्तरित खेती नही कर सकते। साथ ही नयी भूमि व्यवस्था द्वारा दी गयी भूमि पर बसकर जनजातियां खेती नहीं कर सकतीं क्योंकि वे स्थानान्तरित खेती को अपने

शब्द–ब्रह्म
E- ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2016
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

धर्म का अंग समझती हैं और जमीन को जोतकर खेती करने से डरती है। जो लोग ऐसा करते भी हैं उनके हाथ से भी जमीन धीरे-धीरे निकलती जा रही है। महाजन उनको कुछ उधार देकर उसी के बहाने अन्त में उनसे उनकी जमीन पर नौकर रखकर उनसे ही खेती करवाते हैं और अपनी जेब भरते हैं।

4) ऋणग्रस्तता की समस्या

जनजातियों की अज्ञानता और निर्धनता से लाभ उठाने के लिये न केवल व्यापारी बल्कि अनेक कर्ज देने वाले महाजन और साहुकार भी उनके इलाकों में प्रवे श कर गये हैं। भोली-भाली जनजातियों को किसी न किसी उपाय से ऋण के चक्कर में फंसाना अन्त में उनकी जमीन तक छीन लेना, यह इनका रोज का धन्धा है। अनेक पीढियों तक ग्रामीण लोग कर्ज के भार से मुक्त नही हो पाते और अनेक बार उन्हें जिन्दगी भर महाजन की जमीन पर बेगार करनी पडती है। ऋणग्रस्तता से सम्बन्धित इन महाजनों या साहूकारों की समस्या जनजातिय ग्रामीण आर्थिक जीवन की प्रमुख समस्या है।

समाधान

जनजातीय ग्रामीण आर्थिक जीवन की स्थिति सुधारने के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं-

1 प्रत्येक परिवार को खेती के लिये पर्याप्त भूमि देने की व्यवस्था करनी होगी।

2 केवल भूमि ही नहीं, आधुनिक तरीकों से खेती करने के सम्बन्ध में भी उन्हें समुचित शिक्षा देने की व्यवस्था करनी होगी।

3 सरकार की तरफ से बीज , बैल और खेती के अन्य उपकरण खरीदने के लिए ग्रामीणों को आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

4 'स्थानान्तरित' खेती का अन्त होना चाहिए।

5 वन-विभाग द्वारा जंगल की सम्पत्ति के सर्वोत्तम उपयोग के विषय में जनजातियों को उचित शिक्षा देनी चाहिए।

6 उनके आर्थिक उत्थान की किसी भी योजना में उनके घरेलु और छोटे उद्योग-धन्धों के विकास को प्राथमिकता देनी होगी।

निष्कर्ष

सामान्यतः जनजातियां आर्थिक दृष्टि से पिछडी हुई हैं। जनजातियों के साथ होने वाले अन्याय से उनकी रक्षा करने और उन्हें समाज के अन्य भागों के समकक्ष लाने के लिए संविधान द्वारा अनुसूचित कमजोर वर्ग घोषित नही किया गया है। निष्कर्षतः जनजा तीय ग्रामीण आर्थिक जीवन अत्यन्त सरल है एवं निश्चित ढंग से नियोजित एवं विशिष्ट रूप से नियंत्रित नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है एवं वे गरीब हैं। ग्रामीण जीवन एक परिवर्तन की दौर से गुजर रहा है। उनके आर्थिक ढांचों में बदलाव आया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चौहान, डॉ.. जितेन्द्र, प्रसार शिक्षा एवं सूचना तंत्र, ईशा पब्लिकेशन्स, आगरा पृष्ठ 277-278

2. देसाई. ए.आर ., भारतीय ग्रामीण समाज शास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जवाहर नगर, जयपुर पृष्ठ 51-62

3. दोमडिया, डॉ.डी.एम. व बारड, डॉ..बी.आर., ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार , रावत प्रका शन, नई दिल्ली पृष्ठ 21-25

4. श र्मा, के.एल., भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन, रावत पब्लिके शन्स, जवाहर नगर , जयपुर पृष्ठ 83-85

5. कुमारी, ऐंजला, भारत में सामाजिक असमानता , महीप बुक डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 300-303